**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द के जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती इतिहास में हुए ज्ञात वैदिक विद्वानों में अपूर्व विद्वान हुए हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का आविर्भाव सृष्टि की उत्पत्ति के आरम्भ में 1.96 अरब वर्ष पहले हुआ था। हमारे पूर्वजों ने इस ग्रन्थ रत्न की प्राणपण से रक्षा की। उनके पुरूषार्थ का ही परिणाम है कि आज हमें यह ग्रन्थ सुरक्षित प्राप्त हा रहे हैं। विदेशी विद्वान मैक्समूलर तक ने वेदों की रक्षा में प्राचीन भारतीयों द्वारा किये गये पुरूषार्थ पर आश्चर्य व्यक्त किया है। महर्षि दयानन्द ने युवावस्था में सत्य धर्म, ईश्वर तथा जीवात्मा के सत्य स्वरूप की खोज के लिए अपने माता-पिता, बन्धुओं व घर का त्याग कर सारे देश का भ्रमण किया और विद्वानों व योगियों की संगति कर ज्ञान प्राप्त किया। प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी गुरू विरजानन्द सरस्वती के यहां लगभग ढ़ाई वर्षों तक आर्ष व्याकरण का अध्ययन कर उनका अध्ययन पूरा हुआ था। इन्हीं गुरूजी की प्ररेणा से आपने असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन किया। असत्य के मण्डन में ईश्वर के स्थान पर पाषाण व अन्य धातुओं की मूर्ति बनाकर ईश्वर की पूजा का खण्डन भी सम्मिलित था। इसके अतिरिक्त अवतारवाद, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिप्रथा, मृतक श्राद्ध आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का भी खण्डन किया। महर्षि दयानन्द के धार्मिक-सामाजिक अन्धविश्वासों व कुरीतियों के खण्डन का कार्य केवल भावनाओं पर आधारित नहीं था अपितु इसके पीछे वेदों की विचारधारा, मानवजाति और देश का कल्याण तथा मनुष्यों को जीवन के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की उपलब्धि आदि अनेकानेक लाभ प्राप्त कराना प्रमुख उद्देश्य था जिसके लिए उन्होंने अपने समस्त निजी सुखों का त्याग किया था। वह खण्डन का कार्य वेद प्रमाण, युक्ति, तर्क व सृष्टिक्रम के अनुरूप सत्यासत्य की परीक्षा कर किया करते थे। सृष्टि के इतिहास में हम महर्षि दयानन्द के समान समाज-देश व विश्व का हितैषी दूसरा ज्ञानी व पुरूषार्थी विद्वान महापुरूष नहीं पाते। अतः उन पर **‘न भूतो न भविष्यति’** लोकोक्ति पूरी तरह से सुशोभित होती है एवं वह इस उपमा के पूर्ण अधिकारी है। आज के लेख में हम महर्षि दयानन्द के जीवन से जुड़ी तीन प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं।

**महर्षि दयानन्द ने साधु ईश्वरसिंह को चारों वेदों के दर्शन कराये।**

 महर्षि दयानन्द मार्च सन् 1879 में वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए हरिद्वार के कुम्भ मेले में आये हुए थे। वहां पं. ईश्वर सिंह जी निर्मला साधु स्वामी दयानन्द जी से उनके डेरे पर मिले। स्वामी जी ने उन्हें कुर्सी पर बिठाया और स्वयं भी बैठ गये। साधु ने कहा--चारों वेदों के दर्शन हमें करवाइए। वे (स्वामीजी) भीतर से उठा लाये। साधु जी ने बड़े आनन्द से दर्शन किये फिर स्वामीजी ने महीधर तथा सायण कृत भाष्यों की भूलें व दोष उन्हें बताये। उन्होंने कहा कि इन धूर्तों ने अर्थों के महा अनर्थ किये हैं। यह प्रसंग सूचित करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि उन दिनों भारत में एक स्थान पर चार वेदों का उपलब्ध होना संसार के प्रमुख आश्चर्यों में से कम नहीं था। महर्षि दयानन्द के पास यह चारों वेद उपलब्ध थे और वह इन्हें हमेशा अपने पास रखते थे। हमें प्रयास करने पर भी अभी तक ज्ञात नहीं हो सका कि महर्षि को उस समय जब कि भारत में वेदों का कभी किसी प्रेस से मुद्रण नहीं हुआ था, हस्त लिखित चार वेद कहां, किससे व कब प्राप्त हुए थे? परन्तु उन्होंने पुरूषार्थ कर इन्हें प्राप्त कर एक बहुत असम्भव कार्य को सम्भव बनाया था। हम यह भी अनुमान करते हैं कि यदि महर्षि दयानन्द उन दिनों इस कार्य में प्रवृत्त न होते तो सम्भव था कि वेद हमेशा के लिए लुप्त हो जाते और वेद मन्त्रों के सत्य अर्थों का फिर सृष्टि की शेष अवधि में किसी को ज्ञान ही न होता। वेदों का संसार में सबसे अधिक महत्व है। यह इस कारण कि संसार में यदि सबसे अधिक मूल्यवान व पवित्र वस्तु कोई है तो वह ज्ञान है। इसीलिए ईश्वर प्रदत्त वेद मन्त्र **‘गायत्री मन्त्र’** में में ईश्वर से श्रेष्ठ बुद्धि अर्थात् ज्ञान की प्रार्थना व याचना की गई है। गायत्री मन्त्र में **‘धियो यो नः प्रयोदयात्’** कह कर ईश्वर से हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग जो कि केवल वेद मार्ग है, चलाने की प्रेरणा करने के लिए प्रार्थना की गई है। मनुष्य जीवन के लिए संसार का सबसे पवित्रतम व सर्वोत्तम ज्ञान **“वेद”** है। इसकी रक्षा करना संसार के प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य वा धर्म है। यह कार्य महर्षि दयानन्द ने किया इसी लिए वह संसार के पूज्य व सम्माननीय हैं। चार वेद आज से 146 वर्ष व उससे भी पहले से महर्षि दयानन्द के पास उपलब्ध थे, इस महत्व के कारण हमने यह प्रसंग यहां प्रस्तुत किया है। हमारे गुरू व मित्र आर्य विद्वान स्व. श्री अनूप सिंह जी हमें एक प्रसंग सुनाया करते थे कि जब स्वामी विवेकानन्द जी अमरीका गये तो वहां लोगों ने स्वामी जी से कहा कि स्वामी जी आप भारत से आयें हैं। आप कृपया हमें वेद दिखाईये? वह वेदों के दर्शन करने के लिए लालायित थे। तब उनको स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था कि तुम्हें पता नहीं कि वेद कितने बड़े हैं। चारों वेद इतने बड़े हैं कि वह जहाज में नहीं आ सकते, इसलिए मैं उन्हें अपने साथ नहीं ला सका। यह बात श्री अनूप सिंह जी ने अनेक अवसरों पर हमें कही थी। अतः जब चार वेदों की मंत्र संहिताओं की दो भागों में प्रकाशन की योजना **’मैसर्स विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली’** द्वारा बनाई गई तो हमारे गुरूजी ने हमें कहा कि हम प्रकाशक से निवेदन करें कि वेदों को दो जिल्दों में नहीं अपतिु एक ही जिल्द में छापें जिससे हम गर्व से कह सके हमारे परमात्मा का ज्ञान इकट्ठा व एक ही जिल्द में है, यह विभाजित व खण्डित नहीं है। दो जिल्दों में वेद के छपने से वह बात नहीं होगी जो एक जिल्द में छपने से होगी। इससे यह भी सिद्ध होगा कि वेद की पुस्तकें इतने बड़ी नहीं है कि पानी के जहाज में अमरीका न ले जायी जा सकें। हमारे निवेदन पर प्रकाशक श्री अजय आर्य जी ने चारों वेदमंत्र-संहिताओं को एक जिल्द व दो जिल्दों में ग्राहकों को लेने की सुविधा प्रदान की थी।

**मार्च 1879 के हरिद्वार कुम्भ में अद्वैतवादी परमहंस आनन्दवन संन्यासी ने महर्षि दयानन्द का वेद मत ‘त्रैतवाद’ स्वीकार किया और अपना अद्वैत मत छोड़ दिया।**

 मार्च 1879 में महर्षि दयानन्द ने हरिद्वार के कुम्भ में अपना डेरा जमाया हुआ था और यहां उपदेश प्रवचन व लोगों के शंका समाधान किया करते थे। एक दिन प्रातः समय में चारों ओर से तम्बू के द्वार खुले हुए थे। अकस्मात् एक संन्यासी जिसका नाम आनन्दवन था, परमहंस के वेष में कफनी पहने और शिर मुडाये हुए सामने दिखाई पडे़। कोई दस विद्यार्थी उसी आकृति के उसके संग थे। स्वामी जी उसे सामने देखकर खड़े हो गये। तम्बू के द्वार तक आकर उसका स्वागत करके भीतर ले जाकर गद्दी पर बिठलाया। अनुमान से उनकी आयु अस्सी वर्ष से न्यून नहीं थी। शरीर से बलिष्ठ तथा फुर्तीले सक्रिय थे। बैठते ही दोनों मुस्करा कर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हो गये। दोनों संस्कृत बोलते थे। स्वामी जी के डेरे के लोग उनके हावभाव से समझते थे कि जीव ब्रह्म की एकता तथा **’अहं ब्रह्मास्मि’** पर विवाद था। साढ़े छह बजे प्रातः से आरम्भ होकर ग्यारह बजे का समय हो गया। उस समय जोगी सन्तनाथ ने आकर भेजन के लिए कहा। स्वामी जी ने परमहंस जी से कहा। उसने उत्तर दिया कि जब तक इसका निर्णय न हो ले, मैं भोजन नहीं करूंगा। ग्यारह बजे के पश्चात स्वामी जी के आदेशानुसार वैद्य जी चारों वेद तथा 60-65 अन्य पुस्तकें स्वामी जी के सन्दूक से निकाल कर लाये और स्वामी जी के सामने रख दीं। स्वामी जी उनमें से निकाल निकाल कर प्रमाण स्वामी आनन्दवन को दिखलाने लगे। दो बजे तक ऐसे ही चलता रहा। दो बजे के पश्चात् दोनों खड़े हो गये और कुछ बातें परस्पर करने लगे। इस परमहंस ने दो बजे के पश्चात् अपने शिष्यों से कहा--दयानन्द के मत को मैंने स्वीकार किया तुम भी ऐसा ही मानो। फिर बिना भोजन किये चले गये। देश भाषा (बोलचाल की भाषा हिन्दी) नहीं बोलते थे। जब कभी (पहले कभी डेरे पर उपदेश प्रवचन सुनने) आते (थे) तो मुस्करा कर आनन्द से खड़े-खड़े चले जाते। जब स्वामी जी से पूछा गया कि यह (महानुभाव) कौन हैं तो आपने कहा कि यह बड़ा विद्वान् संन्यासी है। पहले अपने को ईश्वर अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता (के सिद्धान्त को) मानता था अब हमारे समान जीव व ब्रह्म को पृथक्-पूथक् (अर्थात् द्वैत को) मानता है। इस घटना के बाद इन परमहंस स्वामी आनन्दवन संन्यासी जी का कोई वर्णन महर्षि दयानन्द के जीवन में नहीं मिलता। यदि महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों को स्वीकार करने के बाद यह भी उनके प्रचार में सहायक बनते तो देश को बहुत लाभ होता।

**निर्मला साधु जोतसिंह स्वामी दयानन्द से वार्तालाप कर उनका अनुयायी बना।**

 उपर्युक्त कुम्भ के अवसर पर ही एक दिन जोत सिंह निर्माला साधु एक बजे मिलने आया और स्वामी जी से बातचीत करने लगा। वह प्रत्येक शब्द व्यंग से बोलता था। इस पर वैद्य जी (स्वामीजी के सहयोगी व अनुयायी) को क्रोध आया। वह बोल उठे, चुप अन्यथा तेरे मुख को ठीक कर दिया जाएगा। स्वामी जी ने उन्हें रोक दिया और समझाया कि यह मुझ से बातचीत कर रहा है। तुम बीच में हस्तक्षेप मत करो। अन्ततः वह क्रोधित होकर बाहर निकल आया और इसी प्रकार से वह दो दिन तक आता रहा और बातचीत करता रहा। तीसरे दिन स्वामी जी व्याख्यान से उठे तो वह इतना प्रभावित हुआ कि एकदम हाथ जोड़कर रोने लगा। स्वामीजी के चरणों में गिरकर कहने लगा कि आप मुझे कृतार्थ कीजिए। जो कठोर कटु वचन मैंने कहे उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। स्वामीजी उसे समझाते रहे। उसने रात का भोजन भी वहीं किया। फिर वहीं रहने लगा तथा दृण आर्य बन गया। इस घटना में स्वामी जी का यह गुण भी प्रकट होता है कि उनसे असभ्यतापूर्वक बात करने वाले व्यक्तियों की बातें भी वह ध्यान से सुनकर उनका निराकरण करते थे। यही कारण था कि उन्हें अपने विरोधियों पर सफलता प्राप्त हुआ करती थी। यह घटना इसका जीवन्त उदाहरण है।

 हम आशा करते हैं कि पाठक इन विचारों को उपयोगी पायेंगे। हम पाठकों को महर्षि दयानन्द के पं. लेखराम व स्वामी सत्यानन्द रचित जीवन चरितों को पढ़ने का निवेदन करेंगे जो महाभारत व रामायण की ही तरह रोचक व ज्ञानवर्धक है एवं इसमें वर्णित प्रसंग जीवन को सत्प्ररेणा देने के साथ धर्म का सत्य स्वरूप भी प्रस्तुत करते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

 **देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**